विकास का साधन है और नैतिकता का अर्थ होता है कि एक अच्छे चरित्र का निर्माण करना, जिससे वह अप
सामाजिक जीवन में समायोजन कर सके।

एक शिक्षित व्यक्ति में नैतिक और चारित्रिक गुणों का विकास होता है, जिससे वह अपनी बुद्धि
समझ-बूझ कर नैतिक आचरण में प्रयोग करे। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि अशिक्षित व्यक्तियों
नैतिक गुणों का अभाव होता है। हरबर्ट का कहना है कि यदि अशिक्षित व्यक्ति अच्छा है तो उसमें अच्
आदतों के आचरण की प्रवृत्ति होती है और वह अपने बड़ों के अच्छे गुणों का आचरण करता है। जिस व्यक्ति
में नैतिक गुणों का समावेश होता है, उसमें आत्म-संयम अधिक होता है। हरबर्ट ने शिक्षा की समस्त प्रक्रिया
जीवन के नैतिक मूल्यों की ओर उन्मुख किया।

चरित्र का विकास करना शिक्षा का एक अहम् उद्देश्य माना जाता है। इसे शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य
मानते हैं, परन्तु इसमें कठिनाई यह आती है कि चरित्र के अतिरिक्त जीवन के अस्तित्त्व के लिए आर्थिक औ
सामाजिक सम्पन्नता की आव—

भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन में भिन्नता
(Difference between Indian and Western Philosophy)

दर्शन का लक्ष्य ज्ञान की खोज है और सर्वव्यापी तथा सार्वभौमिक है। अत: भारतीय दर्शन तथा पाश्चात
दर्शन दोनों अपने ढंग से ज्ञान का विवेचन करते हैं। पाश्चात्य दृष्टि विश्लेषण-प्रधान है तो भारतीय दृष्टि
संश्लेषण-प्रधान है परन्तु दोनों दृष्टिकोणों में कुछ भिन्नतायें हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार है—

1. अर्थ की भिन्नता (Difference of Meaning)—भारतीय दर्शन की उत्पत्ति दृश् धातु के कार
प्रत्यय के योग से हुई जिसका अर्थ है 'देखना'। दर्शनशास्त्र में तत्त्व के स्वरूप का अवलोकन दर्शन है। 'दर्श
शब्द भारतीय परम्परा में बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय दर्शन के प्रणेताओं ने संकुचि
जीवन-दर्शन का सदैव निषेध करके एक अतिविस्तृत मानवीय दर्शन के सृजन पर जोर दिया है। इसके विपरी
पाश्चात्य दर्शन की उत्पत्ति 'Philosophy' शब्द से हुई है। यह ग्रीक भाषा का शब्द है। ग्रीक में Philu त
Sophia का शाब्दिक अर्थ होता है 'ज्ञान के प्रति अनुराग'। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन का अर्थ ज्ञान के प्र
अनुराग है। पाश्चात मत के अनुसार दर्शन केवल शुद्ध बौद्धिक विषय है और यह ज्ञान की खोज मात्र है। जी
से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि ज्ञान केवल ज्ञान के लिए हो अथवा केवल बौद्धिक विकास के लिए हो
इसका मानव समाज व जीवन के लिए कोई उपयोग नहीं हो सकता है। पाश्चात्य दर्शन बौद्धिक अधिक
जीवन को स्पर्श करने वाले तत्त्व उसमें कम है। जबकि भारतीय दर्शन जीवन व जगत् को स्पर्श करता
भारतीय दर्शन ज्ञान के वे केन्द्र हैं जहाँ से जीवन-पथ आलोकित होता है। विद्या को मोक्ष का साधन माना ग
है। यथार्थ विद्या जन्म-मरण के बन्धनों से छुटकारा दिलाती है।

2. विषय-वस्तु की भिन्नता (Differences in Subject-Matter)— भारतीय व पाश्चात्य दर्शन
विषय-वस्तु की भी भिन्नता पाई जाती है। इस रूप में भारतीय दर्शन पाश्चात्य दर्शन से काफी भिन्न है। ज
पाश्चात्य दर्शन का लक्ष्य मात्र ज्ञान प्राप्त करना तथा तत्त्व विश्लेषण है, वहीं भारतीय दर्शन जीवन के अधि
समीप है। पाश्चात्य दर्शन के लिए आत्मा-परमात्मा स्वर्ग-नरक, संसार का नष्ट होना, अमरत्त्व, पुनर्जन्म आ
अर्थ के विषय हैं पर भारतीय दर्शन इन विषय है पर भारतीय दर्शन इन विषयों का अध्ययन करता
आचारशास्त्र अथवा नीतिशास्त्र, तत्त्वविद्या आदि इसके अभिन्न अंग हैं।

3. दृष्टिकोण में भिन्नता (Differences in Views)—दोनों दर्शनों में दृष्टिकोण की भिन्नता
भारतीय दर्शन को पाश्चात्य दर्शन से अलग करती है। भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी है। यह जी
व विश्व की निस्सारता को समझ लेने के बाद निराशावादी हो जाता है। भारतीय दर्शन पर यह एक प्रमुख आरो
है, पर बात ऐसी नहीं है। संसार के चक्र तथा जीवन की वास्तविकता को समझने वाले महात्मा, ऋषि, मनी

वैज्ञानिक व दार्शनिक आदि इससे विरक्त हो जायें तो इसमें कोई निराशावाद नहीं है। भारतीय दृष्टिकोण अधिकांशतः भौतिकवादी है लेकिन भौतिकता जीवन को समृद्ध तथा सम्पन्न बना सकती है पर वास्तविक सुख, सन्तोष तथा शान्ति का दर्शन नहीं करा सकती। पश्चिम में क्रान्ति तथा संघर्षों की जड़ में उनका घोर भौतिकवादी दृष्टिकोण रहा है। इस प्रकार दोनों दर्शनों में दृष्टिकोण का अन्तर है।

उपरोक्त अर्थों में भले ही भारतीय व पाश्चात्य दर्शन एक-दूसरे से काफी दूर प्रतीत होते हों पर दोनों में ज्ञान की खोज, विश्व को समझने की जिज्ञासा एक जैसी है। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि दोनों मत एक-दूसरे के विरोधी व विपरीत हैं बल्कि दोनों में समानता भी पाई जाती है। भारतीय व पाश्चात्य दर्शन ज्ञान की अलग-अलग धारायें हैं, पर दोनों एक स्थान परमिलकर एकाकार हो जाती हैं। दोनों के समन्वय से ही विश्वदर्शन का सृजन हो सकता है। इसमें भारतीय दर्शन मार्गदर्शक बन सकता है क्योंकि भारत में **'त्याग के साथ भोग'** भौतिकता व आध्यात्मिकता के समन्वय का द्वार है।

भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान के दार्शनिक आधार
(Philosophical Basis of Knowledge according to Indian Philosophy)

(1) श्री अरविन्द
(Shri Aurobindo Ghosh)

जीवन-वृत्त (Life-Sketch)

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 को कलकत्ता के हुगली जनपद के ग्राम कोन नगर में हुआ। उनके पिता श्री कृष्णाधन घोष जाने-माने डॉक्टर थे जिन्होंने इंग्लैण्ड में रहकर मेडिकल साइंस का अध्ययन किया था तथा पश्चिमी सभ्यता से ओत-प्रोत होकर भारत लौटे थे। अतः दो बड़े भाइयों के साथ उन्होंने अरविन्द को भी इंग्लैण्ड पढ़ने भेज दिया। उस समय उनकी अवस्था मात्र 7 वर्ष थी। इंग्लैण्ड में थोड़े दिन मान्चेस्टर के पास एक अंग्रेज परिवार के संरक्षण में रहने के बाद उन्हें 1884 में लन्दन में सेंट पॉल स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। तत्पश्चात् 1890 में कैम्ब्रिज के किंग जॉर्ज कॉलिज में प्रवेश मिला, जहाँ वह दो वर्ष तक रहे। 1890 में ही उन्होंने आई०सी०एस० परीक्षा पास की, परन्तु दो वर्ष तक प्रोबेशनरी प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् घुड़सवारी की परीक्षा में उपस्थित न होने के कारण असफल घोषित कर दिये गये। कहा जाता है कि उनका मन उस नौकरी में जाने का नहीं था। उस समय लन्दन में बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ सयाजीराव से उनकी भेंट हुई और उन्होंने उन्हें बड़ौदा की सर्विस में नियुक्ति दे दी। इस प्रकार अरविंद 1893 के जनवरी माह में इंग्लैण्ड से भारत आ गये। उसके बाद वे 1893 से 1906 तक 13 वर्ष तक बड़ौदा नरेश की सेवा में रहे। इंग्लैण्ड में अपने निवास के दौरान उन्होने यूरोपीय संस्कृति एवं सभ्यता का सराहनीय ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इंग्लैण्ड में रहने के कारण इस बीच वे भारतीय संस्कृति के पूर्णतया अनभिज्ञ रहे। अतः बड़ौदा का निवास काल उनकी स्व-संस्कृति एंव साहित्यिक साधना का काल कहा जा सकता है। उसके बाद पॉण्डिचेरी पहुँचकर जो कुछ उन्होंने लिखा वह अपने बड़ौदा निवास काल का ही अर्जित किया हुआ था। बडौदा में ही उन्होंने अपने अभावों क पूर्ति हेतु संस्कृत तथा भारतीय भावनाओं का अध्यन किया। साथ ही, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से स्वयं को जोड़ा। बड़ौदा के अन्तिम दो वर्ष उन्होंने चुपचाप छुट्टी लेकर राजनैतिक क्रिया-कलापों में बिताये क्योंकि अपने पद की गरिमा के कारण खुलकर जनता के सामने आना वर्जित था। परन्तु 1905 में जब बंगाल

का विभाजन हुआ तो वह स्वयं को रोक नहीं सके और उन्होंने बड़ौदा नरेश की नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया तथा 1906 में कलकत्ता चले आये। वहाँ नवस्थापित बंगाल नेशनल कॉलेज के प्राचार्य के पद पर आसीन हुए और खुलकर राजनीति की गतिविधियों से जुड़ गये। यहाँ से उनका राजनैतिक जीवन आरम्भ हुआ।

श्री अरविन्द का जीवन-दर्शन
(Life Philosophy of Sri Aurobindo)

श्री अरविन्द आदर्शवादी थे। उनके दर्शन का आधार उपनिषद् का वेदान्त था। वे जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग तथा ब्रह्मचर्य को विशेष महत्त्व देते हुए विकास के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। उन्होंने बताया कि विकास का लक्ष्य केवल एक ही है और वह है—संसार में व्यापक दिव्यशक्ति अथवा पूर्ण एवं अखण्ड चेतना को प्राप्त करना। श्री अरविन्द का विश्वास था कि विकास का यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। इस विकास क्रम की एक ऐसी स्थिति भी आती है जब मानव अति मानसिक स्तर को प्राप्त करके स्वयं अतिमानव बन जाता है। इस स्तर पर पहुँचकर मानव ज्ञान से अधिक ज्ञान तथा प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर बढ़ता है। इससे उसे आश्चर्यजनक शांति एवं वास्तविक सुख का आनन्द प्राप्त होते हुए सृष्टि के रहस्य तथा व्याप्त सत्यता का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

श्री अरविन्द का शिक्षा-दर्शन
(Educational Philosophy of Sri Aurobindo)

श्री अरविन्द एक महान् दार्शनिक के साथ-साथ उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्री भी थे। उन्होंने मानव जाति को सर्वोच्च आध्यात्मिक विकास का मार्ग दिखाया। इसी दृष्टि से उन्हें मानव के सच्चे धैर्यदाता की संज्ञा भी दी जाती है। श्री अरविन्द ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचारों को अपने साप्ताहिक 'कर्मयोगी' में प्रकाशित किया तथा बताया कि शिक्षक का प्रमुख उपकरण अन्त:करण होता है। इस अन्त:करण के चार पटल अथवा स्तर होते हैं—चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान। शिक्षा को बालक के चारों स्तरों का अधिक-से-अधिक विकास करना चाहिए। आदर्शवादी होने के नाते श्री अरविन्द का शिक्षादर्शन आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य तथा योग पर आधारित है। उनका विश्वास था कि जिस शिक्षा में उक्त तीनों तत्त्व सम्मिलित होंगे उससे मानव का पूर्ण विकास होना निश्चित है। उनके अनुसार मानव में केवल शारीरिक आत्मा ही नहीं होती अपितु उसका बौद्धिक, मानसिक तथा उच्च आध्यात्मिक अस्तित्व भी होता है। यही नहीं, उसमें ईश्वर को पहचानने की शक्ति भी होती है, पर ईश्वर को पहचानने के लिए उसे स्वार्थपरता से ऊपर उठना चाहिए, जो सरल कार्य नहीं है। इस महान् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसकी चिन्तन तथा दैवी शक्तियों को विकसित करना परम आवश्यक है। **श्री अरविन्द** के अनुसार सच्ची शिक्षा वह शिक्षा जो बालक के सामने स्वतन्त्र वातावरण प्रस्तुत करे तथा उसकी रुचियों के अनुसार उसकी क्रियात्मक, बौद्धिक, नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक शक्तियों को विकसित करके उसके आध्यात्मिक विकास में सहायता प्रदान करे। उन्होंने स्वयं लिखा है—**''सच्ची और वास्तविक शिक्षा वह जो मानव की अन्तर्निहित समस्त शक्तियों को विकसित करके उसे सफल बनाने में सहायता प्रदान करती है।''**

शिक्षा-दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त
(Basic Principles)

श्री अरविन्द के शिक्षा-दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए।

(2) शिक्षा बालक-प्रधान होनी चाहिए।

(3) शिक्षा बालक की मनोवृत्तियों तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों के अनुसार होनी चाहिए।

(4) शिक्षा को बालक में छिपी हुई शक्तियों का विकास करना चाहिए।

(5) शिक्षा को बालक की शारीरिक शुद्धि करनी चाहिए।

(6) शिक्षा को चेतना का विकास करना चाहिए।

(7) शिक्षा को मानव के अन्तःकरण का विकास करना चाहिए।

(8) शिक्षा को ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करना चाहिए।

(9) शिक्षा का आधार ब्रह्मचर्य होना चाहिए।

(10) शिक्षा के विषय रोचक होने चाहिएँ।

(11) शिक्षा को बालक की समस्त शक्तियों का विकास करके पूर्ण मानव बनाना चाहिए।

(12) शिक्षा में धार्मिक पुट अवश्य होना चाहिए वरन् भ्रष्टाचार फैलेगा। सच्ची और वास्तविक शिक्षा वही है जो मानव की अन्तर्निहित समस्त शक्तियों को इस प्रकार विकसित करती है कि वह उनसे पूर्ण रूप से लाभान्वित होता है।

शिक्षा का अर्थ
(Meaning of Education)

श्री अरविन्द भारत की प्रचलित शिक्षा के विरोधी थे। वे चाहते थे कि शिक्षा मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण करें, साथ ही वह उसके ज्ञान, चरित्र एवं संस्कृति के उत्कर्ष में सहायक हो। उनके स्वयं के शब्दों के शब्दों में *"सच्ची शिक्षा को मशीन से बना हुआ सूत नहीं होना चाहिए, अपितु इसको मानव के मस्तिष्क तथा आत्म की शक्तियों का निर्माण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिए।"*

वे आगे लिखते हैं, *"सूचनाओं का संग्रह मात्र शिक्षा नही है। सूचनायें ज्ञान की नींव नहीं हो सकतीं। वे अधिक-से-अधिक वह सामग्री हो सकती हैं, जिसके द्वारा जानने वाला अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकता है अथवा ये वे बिन्दु हैं जहाँ से ज्ञान को आरम्भ किया जाये या नई खोजों को निकालना प्रारम्भ किया जाये। वह शिक्षा, जो अपने को ज्ञान देने तक सीमित रखती है, शिक्षा नहीं है।"* श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा बालकों को कर्मठ नागरिक बनाये।

शिक्षा के उद्देश्य
(Aims of Education)

श्री अरविन्द के शब्दों में, *"शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए—विकसित होने वाली आत्मा का विकास करना जो उसमें सर्वोत्तम है, उसे व्यक्त करना तथा उसे श्रेष्ठ कार्य के लिये पूर्ण बनाना।"*

श्री अरविन्द के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) शारीरिक विकास और शुद्धि (Physical Development and Purity)

(2) ज्ञानेन्द्रियों का विकास (Development of Sense)

(3) मानसिक विकास (Mental Development)

(4) नैतिकता का विकास (Develpment of Morality)

(5) अन्तःकरण का विकास (Development of Conscience)

(6) आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development)

(7) विशिष्ट क्षमताओं का विकास (Development of Capabilities)

पाठ्यक्रम
(Curriculum)

श्री अरविन्द ने पाठ्यक्रम के निर्माण हेतु अग्रलिखित सुझाव दिये—

(1) पाठ्यक्रम छात्रों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

(2) पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों का समावेश किया जाए जिनसे बालकों का भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों में पूर्ण विकास हो सके।

(3) पाठ्यक्रम में वे सभी विषय सम्मिलित किए जाने चाहिएँ जिनमें जीवन की क्रियाशीलता के गुण मौजूद हों।

(4) पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसके द्वारा विश्व ज्ञान में बालक की रुचि उत्पन्न हो सके।

उनके अनुसार शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के विषय पर इस प्रकार होने चाहिए—

(1) प्राथमिक स्तर (Primary Level)—मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, गणित व चित्रकला।

(2) माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर (Secondary Level)—मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामाजिक अध्ययन, भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भविज्ञान, गणित और चित्रकला

(3) विश्वविद्यालय स्तर (University Level)—भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, सभ्यता का इतिहास, अंग्रेजी साहित्य, गणित, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, विज्ञान का इतिहास, फ्रेंच साहित्य, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, जीव-विज्ञान और विश्व-एकीकरण (World Integration)।

शिक्षण-विधियाँ
(Methods of Teaching)

श्री अरविन्द का विचार था कि बालकों को पुस्तकों के द्वारा रटाया नहीं जाना चाहिए। पुस्तकों का प्रयोग वे केवल सहायक ग्रन्थों के रूप में करें। शिक्षा प्राप्ति का साधन उपदेश, प्रवचन, व्याख्या, मौखिक शिक्षण आदि विधियाँ होनी चाहिएँ। बालक अपने स्वयं के प्रयत्नों द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति करें। इस प्रकार श्री अरविन्द यद्यपि पाठ्य पुस्तक प्रणाली के प्रयोग का समर्थन करते हैं लेकिन उनका कहना था कि जब बालक ज्ञान की खोज के लिए तैयार हो जाये तभी वे पुस्तकों का उपयोग करें। उनके विचारानुसार योग की क्रिया भी सीखने की एक उत्तम विधि है लेकिन योग की क्रिया का आधार स्वक्रिया, स्वचिन्तन तथा तर्क होना चाहिए।

अनुशासन
(Discipline)

श्री अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार अध्यापकों को बालकों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जिसका अनुकरण कर बालक पहले तो आदर्श आचरण की ओर अग्रसर हों और फिर वैसा ही अनुशासित जीवन व्यतीत करना अपना कर्त्तव्य समझें। उनके अनुसार शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह बालक के साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। उनका कहना था कि दण्ड अमानवीय कृत्य है। कठोरता तथा दंड से अनुशासन कायम नहीं किया जा सकता। वे बालकों के ऊपर आदर्शों को बाहर से लादने के पक्ष में नहीं थे, वरन् उनका विचार था कि बालक आदर्शों को स्वतंत्र रूप से स्वीकार करें। इस प्रकार वे कुछ हद तक मुक्त अनुशासन के पक्षधर थे।

शिक्षक
(Teacher)

श्री अरविन्द के अनुसार अध्यापक को बालकों की अभिरुचियों का अध्ययन करके ही उनके लिए शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। उसे ज्ञान बालकों पर लादना नहीं चाहिए वरन् उसे ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे

(1) पाठ्यक्रम छात्रों की रुचि के अनुकूल होना चाहिए।

(2) पाठ्यक्रम में उन सभी विषयों का समावेश किया जाए जिनसे बालकों का भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों में पूर्ण विकास हो सके।

(3) पाठ्यक्रम में वे सभी विषय सम्मिलित किए जाने चाहिएँ जिनमें जीवन की क्रियाशीलता के गुण मौजूद हों।

(4) पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसके द्वारा विश्व ज्ञान में बालक की रुचि उत्पन्न हो सके।

उनके अनुसार शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के विषय पर इस प्रकार होने चाहिए—

(1) प्राथमिक स्तर (Primary Level)—मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, गणित व चित्रकला।

(2) माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर (Secondary Level)—मातृभाषा, अंग्रेजी, फ्रेंच, सामाजिक अध्ययन, भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भूगर्भविज्ञान, गणित और चित्रकला

(3) विश्वविद्यालय स्तर (University Level)—भारतीय व पाश्चात्य दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, सभ्यता का इतिहास, अंग्रेजी साहित्य, गणित, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, विज्ञान का इतिहास, फ्रेंच साहित्य, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, जीव-विज्ञान और विश्व-एकीकरण (World Integration)।

शिक्षण-विधियाँ
(Methods of Teaching)

श्री अरविन्द का विचार था कि बालकों को पुस्तकों के द्वारा रटाया नहीं जाना चाहिए। पुस्तकों का प्रयोग वे केवल सहायक ग्रन्थों के रूप में करें। शिक्षा प्राप्ति का साधन उपदेश, प्रवचन, व्याख्या, मौखिक शिक्षण आदि विधियाँ होनी चाहिएँ। बालक अपने स्वयं के प्रयत्नों द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति करें। इस प्रकार श्री अरविन्द यद्यपि पाठ्य पुस्तक प्रणाली के प्रयोग का समर्थन करते हैं लेकिन उनका कहना था कि जब बालक ज्ञान की खोज के लिए तैयार हो जाये तभी वे पुस्तकों का उपयोग करें। उनके विचारानुसार योग की क्रिया भी सीखने की एक उत्तम विधि है लेकिन योग की क्रिया का आधार स्वक्रिया, स्वचिन्तन तथा तर्क होना चाहिए।

अनुशासन
(Discipline)

श्री अरविन्द प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास रखते थे। उनके अनुसार अध्यापकों को बालकों के सामने आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जिसका अनुकरण कर बालक पहले तो आदर्श आचरण की ओर अग्रसर हों और फिर वैसा ही अनुशासित जीवन व्यतीत करना अपना कर्त्तव्य समझें। उनके अनुसार शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह बालक के साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें। उनका कहना था कि दण्ड अमानवीय कृत्य है। कठोरता तथा दंड से अनुशासन कायम नहीं किया जा सकता। वे बालकों के ऊपर आदर्शों को बाहर से लादने के पक्ष में नहीं थे, वरन् उनका विचार था कि बालक आदर्शों को स्वतंत्र रूप से स्वीकार करें। इस प्रकार वे कुछ हद तक मुक्त अनुशासन के पक्षधर थे।

शिक्षक
(Teacher)

श्री अरविन्द के अनुसार अध्यापक को बालकों की अभिरुचियों का अध्ययन करके ही उनके लिए शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। उसे ज्ञान बालकों पर लादना नहीं चाहिए वरन् उसे ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे

बालक 'स्वशिक्षा' के पथ पर अग्रसर हों। श्री अरविनद के शब्दों में, *"अध्यापक निर्देशक या स्वामी नहीं है। वह सहायक और पथ-प्रदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि ज्ञान को लादना। वह वासतव में छात्र के मस्तिष्क को प्रशिक्षित नहीं करता है। वह छात्र को केवल यह बताता है कि वह अपने ज्ञान के साधनों को किस प्रकार समृद्ध बनाए। वह छात्र को सीखने की प्रक्रिया में सहायता और प्रेरणा देता है। वह छात्र को ज्ञान नहीं देता है।वह उसे यह बताता है कि वह अपने-आप किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करे। वह बालक के अन्दर निहित ज्ञान को बाहर नहीं निकालता है। वह उसे केवल यह बताता है कि ज्ञान कहाँ है और उसको बाहर लाने के लिए किस प्रकार अभ्यास किया जा सकता है।"*

बालक
(Child)

श्री अरविन्द ने शिक्षा में बालक को प्रमुख स्थान दिया है। उनके अनुसार बालक का विकास उसकी रुचि तथा प्रकृति के अनुसार किया जाना चाहिए। शिक्षा ऐसी हो जो प्रत्येक बालक की विलक्षणताओं और क्षमताओं का विकास करने में सहायक हो। श्री अरविन्द के ही शब्दों में, *"बालक को माता-पिता अथवा शिक्षक की इच्छानुकूल ढालना अन्धविश्वास और जंगलीपन है। माता-पिता इससे बड़ी भूल और कोई नहीं कर सकते कि वे पहले से ही इस बात की व्यवस्था करें कि उनके पुत्र में विशिष्ट गुणों, क्षमताओं तथा विचारों का विकास होगा। प्रकृति को स्वयं अपने धर्म का त्याग करने के लिए बाध्य करना उसे स्थायी हानि पहुँचाना है, उसके विकास को अवरुद्ध करना है तथा उसकी पूर्णता को दूषित करना है।"*

विद्यालय
(The School)

श्री अरविन्द के विचारानुसार प्रत्येक विद्यालय का उद्देश्य बच्चों का भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार का विकास करना होना चाहिए। भौतिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालयों द्वारा संसार की सभी श्रेष्ठ भाषाओं, सभ्यता तथा संस्कृति, गणित और विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाये और आध्यात्मिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय बच्चों को श्रम करने, मानव-सेवा करने और कर्त्तव्य-पालन करने की शिक्षा दें। इसके अतिरिक्त, विद्यालय में योग साधना की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।

विद्यालयों में प्रत्येक जाति, धर्म, रंग और वर्ग आदि के बालकों को प्रवेश मिलना चाहिए। उनमें किसी भी आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया जाना चाहिए। विद्यालय में विश्व-बन्धुत्व की भावना से परिपूर्ण वातावरण बना रहना चाहिए। श्री अरविन्द द्वारा स्थापित अरविन्द आश्रम इन्हीं सब सिद्धान्तों पर आधारित है।

श्री अरविन्द अपने देश की शिक्षा-पद्धति से अत्यन्त दु:खी थे। उन्होंने कहा कि भारतीय समाज और संस्कृति के कल्याण के लिए विदेशी शिक्षा-पद्धति से हमें मुक्ति पानी होगी। उनके अनुसार केवल वह शिक्षा भारत के लिए कल्याणप्रद होगी जो भारत की आत्मा तथा भारत की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के अनुकूल हो। भारत के लिए वह शिक्षा कल्याणप्रद होगी जो भौतिकता के स्थान पर बालक में आध्यात्मिक दीप्ति को प्रज्वलित करें।